विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-3
विक्रम संवत् का आरंभ
डॉ. सरोज शुक्ला

पृष्ठ क्र. 4
बालक ध्रुव के 'तारा' बनने का विज्ञान
प्रमोद भार्गव

पृष्ठ क्र. 5-6
धार्मिक फिल्मों में पौराणिक चरित्र
विनोद नागर

पृष्ठ क्र.- 7
प्राचीन अभिलिखित सिक्कों का इतिहास

पृष्ठ क्र.-8
पुस्तक चर्चा
विक्रमादित्य- पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक विवेचन
श्रीराम तिवारी

विक्रम संवत् का आरंभ

डॉ. सरोज शुक्ला

काल गणना का आरंभ सृष्टि की रचना के साथ ही शुरू हो जाता है, जो लगभग 1 अरब 97 करोड़, 29 लाख, 49 हजार 113 वर्ष पुराना है। भारत में प्राचीन समय से ही पंचांग प्रचलन में थे। ये सभी पंचांग खगोलीय वैदिक पद्धति से काल गणना का निर्धारण करते हैं। काल और इतिहास एक दूसरे के पर्याय हैं। भारतीय इतिहास कई महत्वपूर्ण घटनाओं और काल पुरुषों से भरा हुआ है। अर्थात् काल विशेष में किसी इतिहास पुरुष का अवतरण होता है। ऐसे ही महापुरुष महाराजा विक्रमादित्य की शकों पर विजय के उपलक्ष्य में नवसंवत् 'विक्रम संवत्' का आरंभ प्रथम सदी ईसा पूर्व में भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह हर वर्ष चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को नववर्ष के रूप में मनाया जाता है। वास्तव में इसी दिन भारतीय नववर्ष का प्रारंभ होता है। महान सम्राट विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित संवत् का पहला दिन और संवत् दोनों ही उनके नाम पर आंरभ होते हैं जो हमारे राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है।

विक्रम संवत को लेकर विभिन्न मत

विक्रम संवत् एवं उसके प्रवर्तक महाराजा विक्रमादित्य के विषय में यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों में भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। यद्यपि संवत् प्रवर्तन एक ऐसी घटना है, जिससे कोई भी इतिहासज्ञ इंकार नहीं कर सकता क्योंकि, लगभग दो सहस्त्राब्दी बीत जाने के बाद भी विक्रम संवत प्रचलन में है। विक्रम संवत ने अपने स्थापनाकाल के 2070 वर्ष पश्चात् भी जीवित रहकर संवत् परम्परा में सर्वाधिक जीवन शक्ति प्रदर्शित की है, जो किसी अन्य संवत् ने नहीं प्रदर्शित की। भारत वर्ष में हिमालय से लेकर दक्षिण तक तथा पूर्व से लेकर पश्चिम के विभिन्न भू-भागों में अपनी उपस्थित दर्ज की है। परन्तु फिर भी विक्रमादित्य और विक्रम संवत् को लेकर एवं उनकी ऐतिहासिकता तथा प्रामाणिकता पर कई प्राच्य विद्याविशारदों ने संदेह व्यक्त किया है। सर्वप्रथम हम विभिन्न सिद्धांतों व मतों का नीचे वर्णन करेंगे जो विक्रमादित्य और नवसंवत् पर आधारित हैं।

फर्गुसन का मत

सर्वप्रथम यूरोप के लेखक फरगुसन ने विक्रम संवत् के प्रारंभ की तिथि को लेकर अपना मत प्रकट किया। उनके अनुसार इस संवत् का प्रवर्तन 57 ईसा पूर्व में न होकर 544 ई. सन् में हुआ था।

उनका मत था, कि ईसवीं सन् 545 में उज्जयिनी के विक्रमादित्य नामक व्यक्ति या उपाधिधारी ने हूगों को कोरूर के युद्ध में पराजित किया और एक नये संवत्सर की स्थापना की। उन्होंने संवत् को

57 ईसा पूर्व से समायोजित करने के लिए इसकी स्थापना की तिथि 6 X 100 = 600 वर्ष पीछे धकेल दी।

मैक्समूलर ने भी इस विचित्र मत का समर्थन किया। परन्तु फर्गुसन का यह मत धराशायी हो गया, क्योंकि सन् 544 के पूर्व के भी विक्रम संवत् उल्लेखित अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जो कृत तथा मालव संवत् लिखे हुए मिलते हैं। यह दोनों संवत् अभिन्न हैं।

अल्तेकर का मत

अल्तेकर के अनुसार यदि यह संवत् विक्रमादित्य द्वारा प्रारंभ किया गया होता तो, शुरू से ही उनके नाम पर होता। वास्तव में यह कृत द्वारा आंरभ किया गया जो मालव गण का अधिपति था। मालव एक जाति थी, जो सिकंदर के आक्रमण के समय पंजाब में निवास करती थी। मालव शुद्रक गण संघ ने उसका प्रबल विरोध किया, परन्तु असफल रहे। पारस्परिक फूट के कारण मालव गण अकेला ही यूनानियों से लड़ा और हार गया। मौर्यकाल के उत्तरार्द्ध में शकों के आक्रमण प्रारंभ हुए और मालवादि जातियाँ राजपूताने होती हुईं मध्य भारत पहुँची और नयी बस्ती स्थापित की।

इस बात की पुष्टि की प्रथम शताब्दी ई.पू. मालव जाति आकर अवन्ति-आकर (मालव प्रान्त) में स्थापित हो गई थी, इन क्षेत्रों से प्राप्त मुद्राओं से प्रमाणित है। सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में 'मालवानां जय' लिखा हुआ है। यद्यपि डॉ. अनंत सदाशिव अल्तेकर कालकाचार्य कथानक के विक्रमादित्य संबंधी श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है और जैन परम्परा को अविश्वसनीय, फिर भी वे लिखते हैं- अब यह भी माना जा सकता है कि जिस कृत नामक प्रजाध्यक्ष ने इस संवत् की स्थापना की उसका उपनाम 'विक्रमादित्य' था। जब यहाँ तक अनुमान लगाया तो यह विश्वास किया जा सकता है कि 57 ईसा पूर्व विक्रमादित्य नामक व्यक्ति ही मालवगण का राजा या अधिपति था।

फ्लीट और कनिंघम का मत

कनिंघम ने सर्वप्रथम इस मत का प्रतिपादन किया कि विक्रम संवत् का प्रवर्तक 'कनिष्क' था। बाद में फ्लीट ने इसी पुष्टि भी की। उनका मत था कि 57 ईसवी पूर्व में प्रारंभ होने वाले विक्रम संवत् का प्रवर्तन कुषाण शासक कनिष्क के राज्यारोहण काल से प्रारंभ हुआ।

परन्तु यह मत अन्य विद्वानों द्वारा मान्य नहीं है, क्योंकि पुरातात्विक साक्ष्य जो कि पंजाब तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत से प्राप्त हुए हैं वे कनिष्क को प्रथम सदी या द्वितीय सदी में स्थापित करते हैं। इसके साथ ही कुषाणों द्वारा प्रचलन में कश्मीर में प्रयुक्त सप्तर्षि संवत् था, जिसके सहस्त्र व शत के अंक लुप्त थे। कुषाण संवत् वंशगत था और उनके बाद पश्चिमोत्तर भारत में तथा अन्य भागों में प्रचारित नहीं हुआ। विक्रम संवत् में अंकित तिथि के लेख अधिकांशत: दक्षिणी पूर्वी राजपूताना तथा मध्य भारत में पाये गये हैं। यहाँ तक कनिष्क का शासन नहीं था।

जान मार्शल का मत

सर जान मार्शल ने यह सिद्ध कर दिया कि कनिष्क का काल 57 ई.पू. न होकर 78 ई. है अत: कनिंघम और फ्लीट का विक्रम संवत् संबंधी मत गलत सिद्ध हुआ। परन्तु मार्शल ने गांधार के शक राजा 'अयस' को विक्रम संवत् का प्रवर्तक बताया। इस मत का समर्थन रैत्सन ने भी किया। सर जान मार्शल अयस का अर्थ करते हैं - 'अजेस (AZES) का'। तक्षशिला से प्राप्त अभिलेख में अंक 136 के बाद 'अयस' शब्द आता है उनका यह मानना है कि यह वही संवत् है जो ईसा से 57 वर्ष पूर्व आरंभ होता है परन्तु इसका प्रवर्तक विक्रमादित्य नहीं, अजेस प्रथम था।

अजेस का राज्य पंजाब और कंधार पर था, इस बात की पुष्टि वहाँ से प्राप्त सिक्कों से होती है। इन सिक्कों पर

संवत् एवं उसके प्रवर्तक महाराजा विक्रमादित्य के विषय में यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों में भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। यद्यपि संवत् प्रवर्तन एक ऐसी घटना है, जिससे कोई भी इतिहासज्ञ इंकार नहीं कर सकता क्योंकि, लगभग दो सहस्त्राब्दी बीत जाने के बाद भी विक्रम संवत प्रचलन में है। विक्रम संवत ने अपने स्थापनाकाल के 2070 वर्ष पश्चात् भी जीवित रहकर संवत् परम्परा में सर्वाधिक जीवन शक्ति प्रदर्शित की है, जो किसी अन्य संवत् ने नहीं प्रदर्शित की।

'महाराज राजराजस् महन्तस अयस' लिखा मिलता है जिसका अर्थ 'अजस' से संबंधित होना बतलाया है। परन्तु भण्डारकर महोदय ने इसको गलत बताते हुए बतलाया है, अयस शब्द संस्कृत शब्द 'आद्यस्य' का प्राकृत रूप है और आद्यस्य अथवा अयस से प्रथम आषाढ़ का अर्थ निकलता है, क्योंकि उस वर्ष में दो आषाढ़ थे।

इसके अतिरिक्त अजेस के उत्तराधिकारियों ने भी अजेस के संवत् का प्रयोग नहीं किया। गोण्डाफरनेस के तब्तेबाही लेख में भी 'अयस' का उल्लेख नहीं है। इसमें बैसाख मास तथा पंचमी तिथि उल्लेखित है। युसुफजई के पंजतर लेख में भी श्रावणमास तथा प्रथमा तिथि का उल्लेख है। इन महीनों तथा तिथियों के नाम से स्पष्ट है कि ईसा के पूर्व 57-58 में आरंभ होने वाले संवत् की स्थापना अजेंस नामक विदेशी नहीं अपितु किसी भारतीय द्वारा ही की गई थी। जैन परम्परानुसार महावीर निर्वाण काल के 470 वर्ष बाद विक्रमादित्य ने सकल प्रजा को ऋण मुक्त किया और नवीन संवत् चलाया।

भण्डारकर का मत

डॉ. दत्तात्रेय रामकृष्ण भण्डारकर ने चंद्रगुप्त विक्रमादित्य को ही विक्रमादित्य कहा है, जिसने लगभग 375 ई. से लेकर 413 ई. तक पाटलिपुत्र में राज्य किया था। इस सिद्धान्त को बाद में वि.ए. स्मिथ(33), बेरीडल, कीथ तथा भारतीय इतिहास के एक वर्ग ने स्वीकार भी कर लिया। कुछ विद्वान विक्रमादित्य को समुद्रगुप्त या स्कन्दगुप्त आदि गुप्त शासकों के साथ समेकित करते है। डॉ. भण्डारकर मत पूर्णत: ध्वसांत्मक हैं, क्योंकि हालकृत 'गाथा सप्तशती' में विक्रमादित्य का उल्लेख हो चुका है, अत: उसके अस्तित्व को प्रथम ई.पू. नकारना त्रुटिपूर्ण और असंतोषजनक है।

एक अन्य तर्क यह भी विक्रमादित्य संबंधित महत्वपूर्ण और औचित्यपूर्ण है, कि उसने पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम भारत पर राज्य किया था तथा शकों को इस देश से निष्कासित किया जो उसकी 'शकारि' उपाधि से ज्ञात होता है। अत: गुप्तवंशी द्वितीय चंद्रगुपत वह कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि उसने केवल विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। चंद्रगुप्त प्रथम द्वारा 319-20 ई. में एक नवीन संवत् 'गुप्त संवत्' की स्थापना की गयी थी। जो गुप्त वंश संबंधी सभी राजकीय लेखों में उल्लेखित है। उनके वंश का ह्रास होने के बाद ही पुन: मालव संवत् का उल्लेख मिलता है। कुमार गुप्त के मंदसौर अभिलेख में 493 मालव संवत् उत्कीर्ण है, जो इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल का मत

डॉ. जायसवाल का मत है, कि गौतमीपुत्र शातकर्णि ही विक्रमादित्य था। उन्होंने जैन अनुश्रुतियों और लोककथाओं के समन्वय से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है।

नाशिक अभिलेख में माता गौतमी ने अपने पुत्र में जिन गुणों का होना लिखा है, वह सभी गुण विक्रमादित्य में थे और गौतमीपुत्र शातकर्णि में भी थे। आंध्रनरेश ने क्षत्रप राजा नहपाण को हराया तथा मालवों के साथ शकों को सम्मिलित रूप से हराना गौतमीपुत्र शातकर्णि को ही विक्रमादित्य स्थापित करता है। नहपाण की तिथि अनिश्चित है। साथ ही साथ कण्ववंश के पतन 28 ई.पू. के पश्चात् शातकर्णि आंध्रवंश का राजवंश उदित हुआ जिसकी तालिका में 23वें स्थान पर गौतमीपुत्र शातकर्णि का स्थान आता है अत: किसी भी स्थिति में प्रथम शती ईसा पूर्व गौतमीपुत्र शातकर्णि को नहीं रखा जा सकता। आंध्रनरेशों ने विक्रम संवत् या किसी अन्य आनुक्रमिक संवत का प्रयोग नहीं किया, बल्कि उनके लेखों में तिथि अडकन उनके राज्यारोहण के वर्षों में हुआ है।

लेखकों से निवेदन

महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ का नवीन प्रकल्प **'विक्रम संवाद'** पाक्षिक आलेख सेवा है. विभिन्न प्रकाशन-प्रसारण माध्यमों को नि:शुल्क प्रेषित किया जाता है. इस आलेख सेवा का उद्देश्य प्रमाणिक एवं अज्ञात तथ्यों से पाठकों का परिचय कराना है. आपके पास ऐसी कोई सामग्री हो तो कृपया हमें भेजें.

-संपादक

बालक ध्रुव के 'तारा' बनने का विज्ञान

प्रमोद भार्गव

हमारे अवचेतन में यह धारणा स्थापित है कि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में उल्लेखित मिथकों से जुड़े किस्से सिर्फ धर्म आधारित मोक्ष के पर्याय हैं। उनमें विज्ञान के आधार-सूत्र खोजना महज दुराग्रह है। चलो, दुराग्रह ही सही, हम विनम्रतापूर्वक राजा उत्तानपाद और रानी सुनीति के पुत्र बालक धुव्र के नाभिकीय 'तारा' बनने के किस्से का विज्ञान-सम्मत पाठ करते हैं।

ध्रुव की तपस्या के फलस्वरूप भगवान विष्णु उसे वरदान देते हैं, 'हे ध्रुव ! मैं तुम्हें वह स्थान देता हूं, जो सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रह-नक्षत्रों, सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणों से ऊपर हैं। देवताओं में से कोई चार युग तक और कोई एक मन्वंतर तक ही रहते हैं, किंतु मैं तुम्हें एक कल्प तक स्थिर बने रहने की अनुमति देता हूं।'

चूंकि ध्रुव राजवंश से आते हैं, इसलिए अनेक पुराण और प्रवचनकर्ता विष्णु के इस वरदान रूपी कथन को एक कल्प सत्ता पर राज्य करने की स्थिति के रूप में लेते हैं और ध्रुव तारे को अटल मानते हैं। यद्धपि विष्णु-पुराण में विष्णु स्पष्ट रूप से कहते हैं कि 'तुझे मैं एक कल्प अर्थात तेरह हजार वर्ष रहने की इजाजत देता हूं।' इस संवाद पर गहन सोच-विचार करने से ज्ञात होता है कि इस प्रसंग में खगोल-विज्ञान का बड़ा गूढ़ रहस्य अंतर्निहित है।

हमारे ऋषि-मुनियों को यह ज्ञात था कि पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है, तो यह भी निश्चित रूप में ज्ञात था कि नक्षत्र-पृथ्वी की परिक्रमा नहीं करते। हम अपने शास्त्रों से जानते हैं कि धरती अपनी धुरी पर घूमती है। इस कारण हमें भ्रम होता है कि नक्षत्र हमारे चक्कर लगा रहे हैं। धरती जिस धुरी पर घूमती है, उस धुरी की ठीक सीध में ध्रुव तारा है। इसलिए वह स्थिर अतएव अटल दिखाई देता है। यह पृथ्वी से दिखाई देने वाले तारों में से पैंतालीसवां प्रकाशमान तारा है। पृथ्वी से यह लगभग 434 प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित है। ध्रुव तारा सूर्य से बाईस सौ गुना ज्यादा चमकदार और तीन गुना बड़ा है। परंतु पृथ्वी से अधिक दूरी पर स्थित होने की वजह से लघु रूप में दिखाई देता है। चूंकि यह अपने स्थल पर अटल है, इसलिए इस तारे को साहित्य में 'सत्य-निष्ठ' या 'ध्रुव-सत्य' की संज्ञा भी दी जाती है। तत्पश्चात भी हम जानते हैं कि कुम्हार के चाक की तरह धुरी पर चाक जिस तरह से डोलता है, पृथ्वी भी उसी प्रकार अपने अक्ष पर डोलती है। इस प्रक्रिया को विज्ञान की भाषा में 'पुरस्सरण' (पोलैरिस) कहते हैं।

पृथ्वी को एक पुरस्सरण चक्र पूरा करने में छब्बीस हजार वर्ष लगते हैं। इससे पता चलता है कि ऋषियों को ज्ञात था कि एक तारा और है, जो तेरह हजार वर्ष बाद ध्रुव तारे की तरह ही पृथ्वी की धुरी की दिशा में आ जाता है, अतएव अटल दिखता है। इस तारे का नाम 'अभिजित' या 'वेगा' है। धरती से दिखने वाले तारों में से इसे पांचवां ऐसा तारा माना जाता है, जो बहुत तेज चमकता है। यह पृथ्वी से पच्चीस प्रकाष वर्ष की दूरी पर स्थित है।

वर्तमान में ध्रुव तारा पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर मौजूद है, लेकिन यह फिलहाल एक सीधी रेखा में नहीं है। खगोल-विज्ञानियों का अनुमान है कि 2105 तक पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव में पूरी तरह से एक सीधी रेखा में आ जाएगा। तत्पश्चात फिर से यह ध्रुव तारा उत्तरी ध्रुव की सीधी रेखा में खिसकने लगेगा और फिर छब्बीस हजार साल बाद इसका सीधी रेखा में पुनरागमन होगा। इसका स्थान अभिजित तारा ले लेगा। दरअसल यह पृथ्वी के चक्र की आवर्तन (रोटेशन) पद्धति है, जो तारों की स्थितियों को परिवर्तित कर देती है। हालांकि अनेक वैज्ञानिकों का यह भी दावा है कि यह कभी भी उत्तरी ध्रुव से पूरी तरह विलोपित नहीं होता। बहरहाल, स्पष्ट है कि तेरह हजार वर्ष ध्रुव और अगले तेरह हजार वर्ष अभिजित तारा पृथ्वी की धुरी की सीधी रेखा में रहता है। पृथ्वी और आकाश के रहस्यों की खोज में लगे ऋषियों ने जब नए तारे की खोज कर ली तो विष्णु के कहने पर उसका नामाकरण ध्रुव के नाम पर कर दिया गया।

ध्रुव राजवंश से आते हैं, इसलिए अनेक पुराण और प्रवचनकर्ता विष्णु के इस वरदान रूपी कथन को एक कल्प सत्ता पर राज्य करने की स्थिति के रूप में लेते हैं और ध्रुव तारे को अटल मानते हैं। यद्धपि विष्णु-पुराण में विष्णु स्पष्ट रूप से कहते हैं कि 'तुझे मैं एक कल्प अर्थात तेरह हजार वर्ष रहने की इजाजत देता हूं।'

धार्मिक फिल्मों में पौराणिक चरित्र

विनोद नागर

साल 2013 में जब हमने भारतीय सिनेमा का शताब्दी वर्ष धूमधाम से मनाया, तब तक हिन्दी फिल्मों का स्वरूप काफी कुछ बदल चुका था। मगर भारत में सिनेमा का डायमंड जुबली वर्ष मनाये जाने तक धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक फिल्मों का जबरदस्त बोलबाला रहा। पहली भारतीय फिल्म राजा हरिश्चंद्र ही नहीं बल्कि आने वाले सालों में अधिकांश फिल्मों के नाम और कथानक प्राचीन भारत के धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक संदर्भों को अपने में समाहित किये रहे।

भारत में फिल्म निर्माण के आंकड़ों के तथ्यात्मक विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि सर्वाधिक धार्मिक फ़िल्में 1951 से 1960 के दशक में बनी। इस कालखंड की अधिकतर धार्मिक फिल्मों का निर्माण गुजराती निर्माताओं ने किया। इनमें धीरुभाई देसाई, रमणभाई देसाई, रमेश देसाई, विनोद देसाई, बाबूभाई मिस्त्री, विजय भट्ट,बलवंत भट्ट, भालचंद्र हरसुख भट्ट, चतुर्भुज दोशी, जसवंत झवेरी और मणिभाई व्यास के नाम लिए जा सकते हैं। धार्मिक फिल्में बनाने में महाराष्ट्रीयन फिल्मकार भी पीछे नहीं रहे।

आखिर दादा फाल्के ने अपनी पहली फिल्म के लिए हरिश्चंद्र तारामती जैसा विषय क्या सोचकर चुना होगा? उस ज़माने का वैश्विक सिनेमा जब लाइफ ऑफ़ क्राइस्ट को महिमा मंडित करने में जुटा था, तब स्वाभाविक रूप से फाल्के महाशय को भारतीय अस्मिता से कनेक्ट करने के लिए किसी लोकप्रिय धार्मिक पौराणिक आख्यान को फिल्माने का विचार मन में अवश्य कौंधा होगा। तभी तो वे राजा हरिश्चंद्र जैसी कृति बनाकर अमर हो गए।

मूक फिल्मों के युग में मोहिनी भस्मासुर और राजा हरिश्चंद्र से पहले बुद्ध, सीताराम, पुंडलिक, सावित्री, रामायण जैसी लघु फिल्मों का जिक्र फिल्म इतिहास के पुराने पन्नों में मिलता है। फीचर फिल्मों का चलन शुरू होने पर सत्यवान सावित्री, लंका दहन, राजा हरिश्चंद्र, सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र, प्रह्लाद चरित्र, बर्थ ऑफ़ श्रीकृष्ण,श्रीराम वनवास, दाता कर्ण, राजा श्रीमाल, श्रीकृष्ण भगवान बिलवा मंगलम, अहिल्या उद्धार, कच्छा देवयानी, कबीर कलम, कीचक वध, कालिया मर्दन,जैसी कई धार्मिक फिल्में 1920 तक बनी।

इसके अलावा विश्वामित्र मेनका, द्रौपदी वस्त्र हरण, दक्ष यज्ञ, नरसी मेहता, कृष्ण सुदामा, कंस वध, सती पार्वती, नरसिंह अवतार, शकुंतला, सती तुलसीवृंदा, महाभारत, उर्वशी, विक्रम, श्रीराम जन्म, राम और माया, श्रीसीता स्वयंवर, मृच्छकटिका जैसी फिल्मों के नाम भी भारतीय फिल्मों के शुरूआती दशक में जुड़े।

1921 से 1930 के बीच बनी धार्मिक फिल्मों में जगत जननी जगदम्बा, ध्रुव चरित्र, चंद्रसेना, गोवर्धनधारी, गोपीचंद, लव-कुश, कृष्णमाया, कृष्ण कुमार, पुंडलिक, मीराबाई, मोहिनी, नल-दमयंती, महासती अनुसूया, रत्नाकर, संत तुकाराम, रुक्मणि सत्यभामा, रुक्मणि हरण, सती सुलोचना, सती मदालसा, सावित्री, सुभद्रा हरण, शनि प्रभाव, श्रीकृष्ण लीला,सुरेका हरण, वाल्मिकी, विष्णु अवतार, भक्त विदुर, विक्रम सत्य परीक्षा, उर्वशी, चंद्रहास, यशोदानंदन के नाम गिनाये जा सकते हैं।

जाहिर है सबसे ज्यादा धार्मिक फ़िल्में उस काल में बनी जब दर्शकों को चलती फिरती तस्वीरें देखना किसी चमत्कार से कम नहीं था। मूक फिल्मों के इस दौर में अगली कड़ी के रूप में भक्त पीपाजी, भक्त गोरा कुम्हार, जरासंघ वध, कृष्ण अर्जुन युद्ध, मत्स्य वराह अवतार, गुरु मच्छिन्द्रनाथ, राजा मोरध्वज, बकासुर वध, राजा गोपीचंद, वामन अवतार, वीर भीमसेन, बाली सुग्रीव,शिशुपाल वध जैसी फिल्मों के साथ जन्म वैदेही, गायत्री महात्म्य,हरितालिका,महानंदा, सती नर्मदा, सती वीरमत, श्रीकृष्ण सत्यभामा, चिंतामणि धर्मविजय और तुलसीदास सरीखी फ़िल्में भी बनी।

आने वाले वर्षों में धार्मिक फिल्मों की श्रेणी में सती

लक्ष्मी, सती श्रीमंत्रिणी, सती तारा, सती जस्मा, सती मैना देवी, सती सरोज,महासती अनुसूया,सती मादरी, सती सावित्री,सती पिंगला, सरीखी सती प्रधान फ़िल्में खूब बनीं। इसके अलावा देवदासी, देवी अहिल्याबाई, हिडम्बाबकासुर वध, पांडवों की खोज, इन्द्रसभा, महात्मा कबीरदास, शंकर लीला, भगवा झंडा, भक्त प्रहलाद, भक्त श्रीएकनाथ, कीचक वध, माधव, काल कुंडला, पंच महाभूत, प्रफुल्ला, पाना रत्ना, राधा माधव, भक्त सुदामा, भीम संजीवन, चंडीदास, दशावतार का उल्लेख आवश्यक है।

बोलती फिल्मों का युग प्रारंभ होने पर धार्मिक फिल्मों के स्वरुप में भी धीरे धीरे अपेक्षित बदलाव आने लगा। हर निर्माता निर्देशक के पास नई तकनीक को अपनाने के संसाधन उपलब्ध न होने से मूक फिल्में और बोलती फिल्में साथ-साथ बनती रहीं। उन्नीस सौ तीस के दशक में भालजी पेंढारकर,वी. शांताराम, विजय भट्ट, चंदूलाल शाह, होमी वाडिया देवकी बोस, नितिन बोस आदि ने शीर्ष फिल्मकारों के बतौर अपनी ख़ास पहचान बना ली थी।

इधर धार्मिक फिल्मों के साथ साथ दीगर विषयों पर बनी फिल्में भी दर्शकों को अपनी ओर खींचने में कामयाब होती जा रही थीं। इस दौर की प्रमुख धार्मिक/ पौराणिक फिल्मों में भालजीपेंढारकर की अलख निरंजन(1940)वी. शांताराम की चंद्रसेना(1931), कानजीभाईराठौड़ की भक्त प्रहलाद (1932) और भस्मासुर मोहिनी (1932), चंदूलाल शाह की सती सावित्री (1932), तथा विजय भट्ट की नरसी भगत (1940) और शाहूमोडक की संत ज्ञानेश्वर (1940) उल्लेखनीय है।

चौथे दशक में भी सिनेमा के परदे पर धार्मिक और पौराणिक परिदृश्य पूर्ववत कायम रहा। इस कालखंड में केदार शर्मा, बाबूराव पेंटर,शाहू मोडक, जयंत देसाई, चतुर्भुज दोषी, करण दीवान, सोहराब मोदी, भरत व्यास, त्रिलोक कपूर आदि ने अपनी सृजनधर्मिता से पुराने स्थापित फिल्मकारों के बीच अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज कराई। विजय भट्ट की रामराज्य (1943) और वी. शांताराम की शकुंतला (1943) इस दशक की सर्वाधिक चर्चित फ़िल्में रहीं। केदार शर्मा की चित्रलेखा (1941) और विषकन्या (1943), तथा जयंत देसाई की वीर भीमसेन (1950) तथा हर हर महादेव (1950) ने भी दर्शकों को आकर्षित किया।

धार्मिक फिल्मों के तथ्यात्मक विश्लेषण के दौरान कई विसंगतियों की ओर भी ध्यान जाता है। स्वामी दयानंद सरस्वती और राजा राममोहन राय की सामाजिक सुधारों से जुड़ी पहल पर देश में सती प्रथा पर कानूनी रोक अवश्य लगी, लेकिन प्राचीन काल में सती प्रथा को धार्मिक और पौराणिक आख्यानों ने ही महिमा मंडित किया। भारत में मूक फिल्मों के युग में सती फिल्मों की बहुतायात इस ओर इंगित करती है।

महासती अनुसूया और सती सावित्री पर तो लगभग हर वर्ष कोई न कोई फिल्म बनती रही। यह नहीं कहा जा सकता कि इन फिल्मों को बनाते हुए तत्कालीन फिल्मकारों ने धर्माचार्यों अथवा विषय विशेषज्ञों से कितना परामर्श लिया होगा। चूँकि पौराणिक संदर्भों में नर्मदा को चिर कुँवारी नदी बताया गया है, इसलिए सती नर्मदा फिल्म का शीर्षक चौंकाता है।

भारत में फिल्म निर्माण के आंकड़ों के तथ्यात्मक विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि सर्वाधिक धार्मिक फ़िल्में 1951 से 1960 के दशक में बनी। इस कालखंड की अधिकतर धार्मिक फिल्मों का निर्माण गुजराती निर्माताओं ने किया। इनमें धीरुभाई देसाई, रमणभाई देसाई, रमेश देसाई, विनोद देसाई, बाबूभाई मिस्त्री, विजय भट्ट,बलवंत भट्ट, भालचंद्र हरसुख भट्ट, चतुर्भुज दोशी, जसवंत झवेरी और मणिभाई व्यास के नाम लिए जा सकते हैं।

धार्मिक फिल्में बनाने में महाराष्ट्रीयन फिल्मकार भी पीछे नहीं रहे। राजा नेने, वामन गरचेर, एस. नाडकर्णी, गोविन्द घाणेकर, बाबूराव पेंटर और दत्ता धर्माधिकारी जैसे फिल्मकारों ने धार्मिक फिल्मों से अपनी पहचान बनाई। 1961 से 1970 का दशक भी धार्मिक फिल्मों के नाम रहा। इस अवधि में सामाजिक और रोमांटिक फिल्मों की बॉक्स ऑफिस पर अपार सफलता के बावजूद धार्मिक फिल्मों ने अपना अस्तित्व बनाए रखा।

'विक्रम संवाद' प्राप्त करने के लिए आप हमें ई-मेल अथवा पत्र के माध्यम से सूचित कर सकते हैं. आपको ई-मेल पर सॉफ्ट और पीडीएफ मिल सके. यह नि:शुल्क आलेख सेवा है.

-संपादक

प्राचीन अभिलिखित सिक्कों का इतिहास

उज्जयिनी–उज्जैन प्राचीन भारतीय नगरों में से एक बहुत प्रसिद्ध नगर अवन्ती महाजनपद की राजधानी थी। यह नगर उज्जैन जिले का प्रमुख स्थल व पुण्यतोया शिप्रा नदी के तट पर स्थित है। यह नगर दक्षिणापथ जाने वाले स्थल मार्ग पर सार्थवाहों का आश्रय स्थल तथा व्यापार व्यवसाय का महत्वपूर्ण केन्द्र था। उज्जैन क्षेत्र में बहुतायत सिक्के मिले हैं। इन ताँबों के सिक्कों के पुरोभाग पर शिवलिंग एक मुख, शिव के विविध स्वरूप, त्रिमुख शिव और उमा–महेश्वर का चित्रण है। यह द्वितीय प्रथम सदी ईसा पूर्व में शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र था। उज्जैन उत्खनन से 'उजेनिय' नगर नामांकित सिक्के मिले हैं। उज्जैन नगर नामांकित सिक्कों मेंएक सिक्के के पुरोभाग पर दक्षिणाभिमुख निम्न शुंड हस्ती खड़ा है तथा एक वृत्त उज्जयिनी चिह्न है। वाम भाग पर दाहिनी ओर अष्टार चक्र, पंचांगुल के (हाथ की छाप) और निम्न भाग में बाह्मी लिपि में नगर का नाम 'उजेनिय' अंकित है। एक अन्य सिक्के के पुरोभाग पर अष्टार चक्र तथा निम्न भाग में बाह्मी लिपि में नगर का नाम 'उजनि' (य) और सिक्के के ऊपरी भाग पर ब्राह्मी 'म' अक्षर अंकित है। वाम भाग पर ब्राह्मी लिपि में अंकित लेख अस्पष्ट है। नगर के ये सिक्के द्वितीय सदी ईसा पूर्व के हैं।

कुरघर–अवन्ती जनपद में उज्जयिनी के समीप कुरघर स्थित था। बौद्ध आचार्य महाकात्यायन अवन्ती जनपद के अंतर्गत उज्जयिनी के समीप कुरघर नामक नगर के निवासी थे। अंगत्तुर निकाय के अनुसार अवन्ती के अंतर्गत कुरघर पर्वत पर एक समय महाकात्यायन ने निवास किया था। साँची स्तूप पर उत्कीर्ण अभिलेखों में कुरघर का नाम वर्णित है। अश्विनी शोध संस्थान के एक ताँबे के सिक्के के पुरोभाग पर अर्ध्यचन्द्र युक्त मेरु , हालो क्रास तथा निम्न भाग में मोटे ब्राह्मी लिपि (द्वितीय सदी ईसा पूर्व) के अक्षरों में 'कुरघर' नगर नाम तथा वाम भाग पर हालो क्रास अंकित है।

माहिष्मति– (वर्तमान) महेश्वर कसरावद से उत्तर में पाँच किलोमीटर तथा इंदौर से दूर दक्षिण नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर स्थित है। माहिष्मती प्राचीन समय में अनूप जनपद की राजधानी थी। पंतजलि के महाभाष्य में माहिष्मती की समृद्धि का उल्लेख है। माहिष्मती (ज्वालेश्वर टीले) के सर्वेक्षण से पाँच सिक्के माहिष्मती नगर नामांकित प्राप्त हुए हैं। अश्विनी शोध संस्थान के सिक्के के पुराभाग पर ब्राह्मी लिपि में 'महिस्मती' (माहिष्मती) नगर नाम अंकित है। वाम भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिह्न अंकित है। 'महिस्मती' नगर नामांकित सिक्कों का तिथिक्रम तीसरी अथवा दूसरी सदी ईसा पूर्व निर्धारित किया गया है।

विदिशा– प्राचीन नगर की पहचान वर्तमान बेसनगर से की गई है, जो मध्यप्रदेश के अंतर्गत भेलसा के निकट है। विदिशा दक्षिणापथ आने वाले स्थल मार्ग में स्थित एवं व्यापार–व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र था। यह नगर वाणिक–संघों की श्रेणियों और गज–दंतकारों के शिल्पियों की श्रेणी के लिए प्रसिद्ध था। यह नगर द्वितीय प्रथम सदी ईसा पूर्व में वैष्णव धर्म का महत्वपूर्ण स्थल था। शंगु शासक भागभद्र के शासनकाल में यूनानी शासक अन्तिलिकित का राजदूत हेलियोदार भागभद्र के राज दरबार में बेसनगर (वर्तमान में विदिशा) आया था। उसने यहाँ विष्णु के प्रासादोत्तम के समक्ष गरुड़ स्तम्भ स्थापित करवाया था। विदिशा नगर राज्य के सिक्के के पुरोभाग पर अर्द्धचंद्र युक्त त्रिमेरु तथा ब्राह्मी लिपि में नगर नाम 'वेदसस' अंकित है। नगर राज्य के सिक्के द्वितीय सदी ईसा पूर्व के हैं।

सुतिमति– यह ताँबे की ढली मुद्रा है। इस पर ब्राह्मी लिपि में 'सुतिमती' लेख अंकित है। महाभारत में शुक्तिमती का उल्लेख चेदी राज्य की राजधानी के रूप में हुआ है। इस नगर को उत्तर प्रदेश के बाँदा शहर के समीप अवस्थित माना गया है।

त्रिपुरी– यह प्राचीन नगर, नर्मदा नदी के तट से कुछ दूरी पर तेवर नाम से जबलपुर के समीप स्थित है। पौराणिक परम्परा अनुसार इसकी स्थापना त्रिपुरासुर ने की थी। त्रिपुरी नगर के सिक्के के पुरोभाग पर ऊर्ध्व भाग में हालो क्रास, दाहिनी ओर सचन्द्र त्रिमेरु और बायीं ओर ब्राह्मी लिपि में नगर का नाम 'त्रिपुरी' अंकित है। वाम भाग रिक्त है। त्रिपुरी नामांकित सिक्कों का तिथि क्रम तृतीय सदी ईसा पूर्व निर्धारित है।

पुस्तक चर्चा/श्रीराम तिवारी

विक्रमादित्य-पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक विवेचन

विक्रमादित्य भारतवर्ष में युग परिवर्तन और नवजागरण की एक महत्वपूर्ण धुरी रहे हैं. भारतीय इतिहास में उनकी उपस्थिति एक अविस्मरणीय परिघटना है. उनके उद्‌भव तक विशुद्ध वैदिक संस्कृति का काल, रामायण, महाभारत युग, महावीर, गौतम बुद्ध का समय, चंद्रगुप्त मौर्य एवं प्रियदर्शी अशोक, पुष्यमित्र शुंग की साहस गाथा, वेद, पुराण, सूत्र ग्रंथ एवं स्मृतियों, वैयाकरण, पाणिनी, पतंजलि तथा चाणक्य का आलोक भारतवर्ष को चमत्कृत किये हुए था. लेकिन विक्रमादित्य के समय के आते-आते ही विदेशी आक्रांताओं ने भारत गौरव और ज्ञान सम्पदा के सुनियोजित विनाश का अभियान चलाया. लेकिन विक्रमादित्य ने न केवल विदेशी आक्रांताओं का सामना किया बल्कि उन्हें देश को विदेशी हमलावरों से निर्विवाद मुक्ति दिलायी थी.

'विक्रमादित्य-पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक विवेचन' में डॉ. किरण शर्मा ने विक्रम कालीन विविध आयामों का विशद् अध्ययन किया है. ना केवल अध्ययन किया है बल्कि पूरी मेहनत और लगन के साथ तथ्यों को प्रामणिक तौर पर तथ्यों और तर्कों की कसौटी पर परखते हुए पुस्तक के रूप में समाज को सौंपा है. निश्चित रूप से इस पुस्तक का पठन-पाठन करते हुए हमारे समक्ष अनेक ऐसी जानकारियां आती हैं जिनके बारे में हम अनभिज्ञ रहे हैं. यह किताब नहीं बल्कि एक मायने में यह विक्रमकालीन पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक कालखंड का जीवंत दस्तावेज है.

इस बात को कहने में कोई हिचक नहीं होना चाहिए कि उपनिवेशवादी मानसिकता के इतिहासकारों ने विक्रमादित्य के अस्तित्व को ही सिरे से नकार दिया गया था. ठीक उसी प्रकार विक्रम संवत को लेकर भ्रम की स्थिति उत्पन्न की गई थी. इन सारे भ्रम और उलझन को दूर करने की सार्थक और प्रामाणिक प्रयास लेखक डॉ. किरण शर्मा ने किया है. नये भारत के लिए यह पुस्तक इस मायने में भी प्रासंगिक है कि युवा भारत अपने इतिहास को समझ सके.

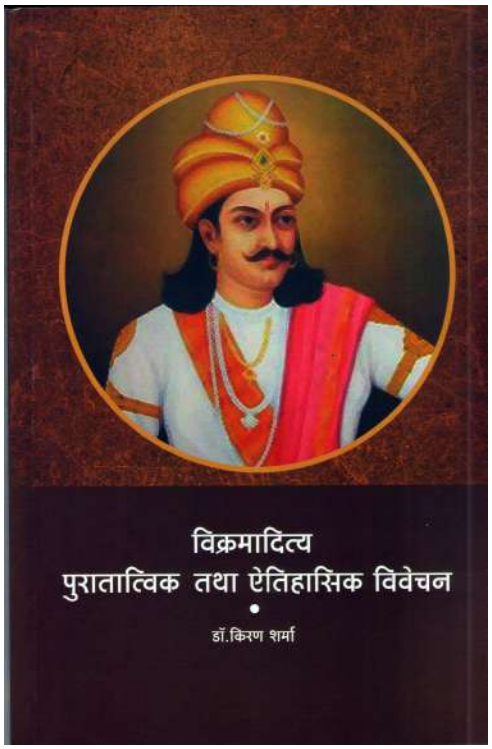

पुस्तक : विक्रमादित्य-पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक विवेचन

लेखक : डॉ. किरण शर्मा

संपादक : श्रीराम तिवारी

मूल्य : 200/- दो सौ रुपये मात्र

प्रकाशक : महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, 1 उदयन मार्ग उज्जैन-456010

'उज्जयिनी से 'मालव नाम गणस्य राज्य' अक्षरांकित अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं. यह मुद्रा पंजाब व अन्य स्थानों से भी प्रकाश में आयी है. रेपसन, कार्लाईल, भंडारकर, महेश कुमार आदि विद्वानों ने इसका काल प्रथम शती ईसा पूर्व माना है. यही समय था जब विक्रमादित्य ने 58 ईप्र. पर मालवा एवं अवंति पर राज्य किया था.'

इसी किताब से